चाय बागानों के आसपास की दुनिया

विवेक मेहता

"आप चाय लेंगे या पानी?" क्यूँ, अक्सर यही पूछते हैं न हम जब कोई मेहमान हमारे घर आता है? वैसे ये सवाल जायज़ भी है, क्योंकि पानी के बाद शायद चाय ही दुनिया भर में पिया जाने वाला सबसे लोकप्रिय पेय है। हमारे देश में भी अमूमन सभी प्रान्तों में लोग चाय को बड़े ही चाव से पीते हैं। मुझे ये तो याद नहीं कि पहली बार मैंने चाय कब पी, पर इससे मेरा परिचय बचपन से ही है। मेरा जन्म मध्य प्रदेश के एक छोटे-से कस्बे नौरोजाबाद में हुआ था, जहाँ की कोयला खदानों में मेरे पिताजी काम किया करते थे। सुबह जब वो अपने काम पर निकलते तो माँ उन्हें चाय बनाकर दिया करती। काले दानों से भरा चाय-पत्ती का एक डिब्बा हमारे

घर की रसोई का एक अभिन्न हिस्सा उस समय भी था और आज भी है। जब मैं पहली दफा असम गया तो रेल और बस के सफर के दौरान, रास्तों के किनारे चाय के कुछ छोटे-बड़े बागान देखे। आजकल मैं असम के ही एक शहर तेजपुर में रह रहा हूँ। एक दिन मौका मिला एक चाय बागान में तफरीह करने का, बागान में काम करने वाले लोगों से बात करने का। आगे के पन्ने उसी दिन, यानी 11 अक्टूबर, 2012 को लिखी मेरी डायरी से हैं।

आई.आई.टी., कानपुर में अपनी पीएच.डी. थीसिस जमा करके असम की तेजपुर युनिवर्सिटी आए हुए मुझे तकरीबन डेढ़ महीना हो चुका है। इस दौरान अमूमन मेरा समय युनिवर्सिटी कैम्पस के भीतर ही गुज़रा है। मेरी पत्नी निर्माली के शोधकार्य के चलते एक दफा रौता (असम का एक छोटा-सा कस्बा) जाना हुआ है और इक्का-दुक्का बार हम शहर गए हैं। कैम्पस के आस-पास जो गाँव या कस्बे हैं, उनके बारे में मेरी जानकारी लगभग शून्य ही है।

आसपास के गाँव और कस्बे

मेरे दोस्त अमीय उड़ीसा के कालाहांडी ज़िले के रहने वाले हैं। वहीं से प्राणी-विज्ञान से स्नातक करने के बाद दिल्ली चले गए। इसके बाद जामिया मिलिया इस्लामिया युनिवर्सिटी से समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर व दिल्ली स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स से एम.फिल. की पढ़ाई की। पीएच.डी. करने के लिए जवाहरलाल नेहरू युनिवर्सिटी, दिल्ली में दाखिला लिया पर उसे बीच में ही छोड़कर तेजपुर युनिवर्सिटी आ गए। 2007 से यहीं हैं व तेजपुर युनिवर्सिटी के छात्रों को समाजशास्त्र पढ़ाने के साथ-साथ नए विषय पर शोध कर रहे हैं। अपने इसी शोधकार्य के चलते वे युनिवर्सिटी कैम्पस के आसपास की जगहों पर जा रहे थे। उन्होंने मुझे साथ चलने का न्यौता दिया और मैं सहर्ष साथ हो लिया। इस बहाने मुझे आसपास की जगहों पर घूमने और लोगों से मिलने का मौका मिला।

सबसे पहले हम नापाम गाँव के पंचायत ऑफिस गए। लगभग ग्यारह बज रहे थे पर ऑफिस में सिर्फ एक ही व्यक्ति था। उसका काम शायद ऑफिस खोलकर साफ-सफाई करना था। अमीय उस कर्मचारी से बात करने लगे और मैं आसपास की जगह देखने लगा। मुझे कुछ बच्चे दिखाई दिए जो कि तकरीबन 4-5 साल के रहे होंगे व पंचायत ऑफिस के पीछे की दीवार की तरफ मुँह किए खुले में पेशाब कर रहे थे। फिर अचानक बच्चों

की संख्या बढ़ने लगी और उनके पीछे-पीछे एक महिला हाथ में छड़ी लिए आ पहुँची।

मुझे समझ में आया कि पंचायत ऑफिस के पीछे बने दो कमरों में से एक में आँगनवाड़ी केन्द्र चल रहा है और वे बच्चे व मैडम उसी के हैं। अमीय जिस कमरे में पंचायत कर्मचारी से बात कर रहे थे उसकी खिड़की से आँगनवाड़ी साफ दिखाई दे रही थी। बच्चों व छड़ी वाली मैडम के अलावा एक और महिला भी थी, जिसका काम चूल्हा सम्भालने का था। हम वहाँ ज़्यादा देर नहीं रुके, कभी फिर आने का सोचकर आगे चल दिए।

फिर हम पोरवा के पास के नूरबाड़ी चाय बागान की तरफ चल दिए। अमीय को मैंने अच्छी असमिया बोलते सुना है। रास्ते में मैंने उनसे पूछा कि वह असमिया कैसे सीख गए। उन्होंने बताया कि उड़ीसा के जिस हिस्से से वह आते हैं वहाँ जो भाषा-बोली बोली जाती है, उसके चलते असमिया सीखने में दिक्कत नहीं हुई। न केवल असमिया बल्कि मैथिली, बंगाली, मराठी और गुजराती भाषा भी बोलने और समझने में उन्हें ज़्यादा दिक्कत नहीं होती। मुझे आश्चर्य हुआ कि बाकी सब तो ठीक है पर ये उड़िया और गुजराती का जोड़ कैसे बैठता है।

अनेक लोग अनेक बोलियाँ

इसी बातचीत के दौरान हम चाय बागान पहुँच गए। अमीय नापाम पंचायत के अन्तर्गत आने वाले गाँवों के लोगों पर अपना शोधकार्य कर रहे हैं। उन्हें पता करना था कि क्या इस चाय बागान में काम करने वाले कामगारों में से कुछ उस पंचायत के

चाय की खोज किसने की या इसका उपयोग पहले-पहल कहाँ शुरू हुआ, ये तो कहना मुश्किल है, पर इसका इतिहास काफी पुराना है। चाय के इस्तेमाल के शुरुआती सबूत चीनी दन्तकथाओं में मिलते हैं। चाय के प्रचलित नाम चाय, टी वगैरह भी चीनी भाषाओं से ही निकलते हैं। भारत में चाय की खोज का श्रेय स्कॉटलैंड के एक खोजी व्यापारी, रोबर्ट ब्रूस, को दिया जाता है। इस दावे के मुताबिक रोबर्ट ब्रूस ने उत्तर-पूर्व के जंगलों में अपने आप ही होने वाली चाय की भारतीय प्रजाति की खोज 1823 में की थी। पर यह दावा विवादास्पद है। कुछ इतिहासकारों की मानें तो भारतीय उत्तर-पूर्व की एक प्रमुख जनजाति सिंगफो पहले से ही चाय की एक ऐसी प्रजाति की खेती कर रही थी जिसके बारे में किसी को पता नहीं था। रोबर्ट ब्रूस को जब यह जानकारी मिली तो उन्होंने सिंगफो जनजाति के मुखिया से मिलकर चाय के पौधों व बीज के कुछ नमूने इकट्ठे किए। खैर, वर्तमान भारत में चाय के उपयोग की शुरुआत या खोज की सच्चाई जो भी हो, यह बात सच है कि व्यवसायिक तौर पर चाय की खेती अँग्रेज़ों के आने के बाद ही शुरू हुई। अपनी इस खोज के एक साल के अन्दर ही ब्रूस 1824 में गुज़र गए। इत्तफाक से मैं असम के जिस शहर तेजपुर में बैठा यह लिख रहा हूँ, उसी के एक कब्रिस्तान में उन्हें दफनाया गया था।

अन्तर्गत हैं। हम मैनेजर का दफ्तर खोजते-खोजते, कीचड़ भरे रास्ते से होते हुए उस जगह पहुँचे जहाँ दफ्तर होने की गुंजाइश थी। उजाड़-सी कोठरियों के बीच बड़े-बाबू का दफ्तर था। फाइलों से भरे उस कमरे की सीलिंग बस गिरने को तैयार थी और उससे लड़ता-झगड़ता सीलिंग फैन घूम रहा था।

हमारे परिचय के बाद बड़े-बाबू ने हमें बाइज़्ज़त बिठाया पर जब अमीय ने उन्हें अपने आने का मकसद बतलाया तो उन्होंने जानकारी न होने का हवाला देते हुए किसी और व्यक्ति को बुलाया, जो कि बागान का ही एक कर्मचारी था। उन्होंने बताया कि 335 हेक्टेयर में फैला बागान दो पंचायतों के बीच में पड़ता है और उसमें नापाम पंचायत के लोग भी रहते हैं, बात ही बात में ये पता चला कि बागान में काम करने वाले लोगों में उड़िया, बंगाली, बिहारी व और भी कई जगहों के लोग हैं। ये पता चलने पर कि अमीय उड़ीसा से हैं, उन्होंने उड़ीसा मूल के एक युवा कामगार को भी दफ्तर में बुलवा लिया। थोड़ी देर उन लोगों से बातचीत करने के बाद हमने उनसे बागान से होकर कामगारों की बस्ती की तरफ जाने की इजाज़त ली। बाइक बड़े बाबू के दफ्तर के सामने छोड़कर हम पैदल ही आगे बढ़े।

चाय-बागान में चहलकदमी करने

का यह मेरा पहला तज़ुर्बा था। रास्ते में अमीय ने मुझे बतलाया कि आसाम के चाय-बागानों में काम करने वाले कामगारों में से लगभग 40 प्रतिशत लोग उड़ीसा मूल के हैं। उन्होंने मुझे एक दिलचस्प बात यह भी बतलाई कि इन बागानों में एक खास तरह की बोली बोली जाती है, जिसे *बागानी* या *शाद्री* बोली कहते हैं। इस बोली की खासियत यह है कि यह बोली यहाँ काम करने वाले लोगों की अपनी-अपनी भाषाओं व बोलियों से मिलकर बनी है। शायद इस नई बोली के बनने का कारण ही यह था कि इन बागानों में अलग-अलग जगहों के लोग आकर बसे और उनकी अलग-अलग भाषाएँ व बोलियाँ थीं। साथ में रहने और काम करने की ज़रूरत ने ही इस बोली को जन्म दिया होगा।

बस्ती के लोगों से बातचीत

तकरीबन सवा बारह बजे हम कामगारों की बस्ती की तरफ पहुँचे। एक छोटी-सी बन्द दुकान के सामने दो बुज़ुर्ग, दुकान के दरवाज़े से टिके बैठे हुए थे। अमीय ने उनके साथ बातचीत शुरू की। वो असमिया में बात कर रहे थे। शायद अमीय गाँव के बारे में जानकारी ले रहे थे। मैंने एक-दो सवाल हिन्दी में किए और जब जवाब हिन्दी में मिले तो लगा कि मैं भी इस बातचीत में हिस्सा ले सकता हूँ। मैं अमीय के बगल में ही दुकान के किनारे लगे लकड़ी के पटरे पर बैठ गया। बातचीत में पता चला कि उनमें से एक बुज़ुर्ग उड़ीसा से हैं और दूसरे झारखण्ड से।

कुछ ही देर में हमारे आसपास दो-चार लोग और जुट गए व बातचीत में हिस्सा लेने लगे। उन्होंने बताया कि कैसे बागान वालों ने उनके पुरखों की ज़मीन ले ली।

मैंने उनसे बागान में उनके काम के बारे में जानकारी लेनी चाही। हमें पता चला कि साल भर बागान में रोज़ाना तकरीबन 225-250 लोगों का काम रहता है। काम करने वालों में

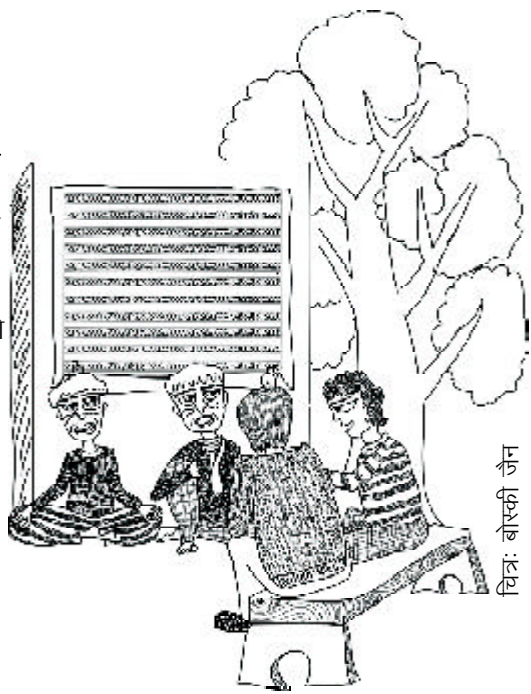

चित्र: बोस्की जैन

चाय का व्यावसायिक उत्पादन और प्रवासी कामगार

1823 में अँग्रेज़ों की जानकारी में आने के बावजूद असम में चाय का उत्पादन आने वाले कई वर्षों तक बड़े पैमाने पर शुरू नहीं हुआ। इस दौरान कई सफल-असफल प्रयोग हुए। दिसम्बर 1837 में पहली बार असम की चाय लन्दन भेजी गई। 1850-60 के दशकों के बाद उत्पादन में तेज़ी आई। 1866 में ब्रिटेन में आयात हुई चाय में से भारत की हिस्सेदारी मात्र 4 प्रतिशत थी और चीन की 96 प्रतिशत। पर 1886 तक आते-आते भारत का हिस्सा 34 प्रतिशत तक पहुँच गया। 1903 में यह हिस्सेदारी बढ़कर 59 प्रतिशत हो गई और चीन की मात्र 10 प्रतिशत ही रह गई। बाकी बचे आयात का हिस्सा श्रीलंका से आ रहा था जो 1815 तक अँग्रेज़ों के कब्ज़े में आ गया था, जहाँ 1867 से ही चाय का उत्पादन शुरू हो चुका था। ज़ाहिर-सी बात है कि चाय की पैदावार बढ़ाने के लिए नए बागानों और उनमें काम करने के लिए कामगारों की ज़रूरत पड़ी होगी। लेकिन जिस समय अँग्रेज़ चाय की खेती को बढ़ावा दे रहे थे, उस समय असम की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था खेती आधारित थी। दिहाड़ी लेकर एक वेतन भोगी के तौर पर काम करने की बजाय लोग अपने खेतों में ही काम करना ज़्यादा पसन्द करते थे। ऐसी स्थिति में जहाँ एक ओर नए बागान लगाने के लिए बागान मालिकों को सस्ती दरों पर ज़मीनें उपलब्ध करवाई गईं, तो वहीं दूसरी ओर खेतीहर जनता पर 'कर' बढ़ा दिए गए। किसानों द्वारा पहले से की जा रही अफीम की खेती पर रोक लगा दी ताकि वो अपने खेतों को छोड़कर बागानों में काम करने के लिए मजबूर हों। लेकिन इससे भी कामगारों की कमी पूरी नहीं हो पाई। बागान मालिकों के मुताबिक स्थानीय कामगार अनुशासनहीन और अनियमित थे, इसलिए बागानों में काम करने के लिए दूसरे प्रदेशों से कामगार लाए गए। छोटा नागपुर पठार के इलाकों (जिसमें आज के झारखण्ड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, बिहार व छत्तीसगढ़ के हिस्से आते हैं) में रहने वाले लोग बागानों में काम करने के लिए सबसे ज़्यादा उपयुक्त पाए गए, इसलिए यहाँ से सबसे ज़्यादा कामगार लाए गए। इसके अलावा युनाइटेड प्रोविंस (लगभग आज के उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड), सेंट्रल प्रोविंस व बेरार (आज के मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ व महाराष्ट्र के इलाके), व मद्रास प्रोविंस से भी कामगार लाए गए और उन्हें चाय बागानों के आसपास ही बसाया गया। 1921 की जनगणना रपट के हिसाब से असम प्रान्त की कुल जनसंख्या 79,90,246 थी, जिसमें से 12,90,157 लोग (लगभग हर 6 में से 1) अन्य प्रान्तों से आए हुए अप्रवासी थे।

महिला व पुरुष, दोनों ही हैं। इस समय इन कामगारों का दिहाड़ी वेतन 84 रुपए है जो कि 2011 से ही लागू हुआ है। उससे पहले यह 71.50 रुपए होता था और उससे भी पहले 66 रुपए। हर तीन सालों में कामगारों की यूनियन के प्रतिनिधि और बागान मालिक मिलकर यह दिहाड़ी वेतन तय करते हैं। उड़िया बुज़ुर्ग ने बतलाया कि आज़ादी के बाद जब नया पैसा

शुरू हुआ तब 1950 में कामगारों का वेतन 1.50 रुपए प्रति हफ्ता था। उस समय महिलाओं और पुरुषों के वेतन में अन्तर भी होता था। महिलाओं का कम, पुरुषों का ज़्यादा। पर अब ऐसा नहीं है।

बातचीत के दौरान पता चला कि दोनों बुज़ुर्गों का जन्म इसी चाय बागान में हुआ था और उनके पुरखे अँग्रेज़ों के समय से यहाँ काम कर रहे हैं। उड़िया बुज़ुर्ग ने बतलाया कि जिस समय अँग्रेज़ यहाँ चाय बागान शुरू कर रहे थे तब अन्य जगहों पर सूखा पड़ा हुआ था। उस समय उनके पुरखों को नदी के रास्ते असम लाया गया था। मेरे पूछने पर कि यह इतिहास उन्हें कैसे पता, उनका कहना था कि उन्होंने अपने बाबा (पिताजी) से सुना था और उनके बाबा ने अपने बाबा से।

उड़िया बुज़ुर्ग ने हमें अपने घर आने का न्यौता दिया और हम बाकी सभी से विदा लेकर उनके घर की तरफ चल दिए। रास्ते में मैंने उनके बच्चों के बारे में पूछा तो शर्माते हुए उन्होंने बतलाया कि उनके छः बच्चे हैं; चार लड़के और दो लड़कियाँ। सभी की शादी हो चुकी है। बागान के

चित्रः बोस्की जैन

अन्दर पड़ने वाली ज़मीन में बसा उनका घर काफी बड़ा व साफ-सुथरा था। इसी दौरान उनका छोटा बेटा भी घर आ गया। इत्तफाकन यह वही युवा कामगार निकला जो हमें बड़े बाबू के दफ्तर में मिला था। उसने बतलाया कि उनके सबसे बड़े भाई स्कूल में पढ़ाते हैं, एक उनके साथ बागान में ही काम करता है व एक घर की 20 बीघा ज़मीन सम्भालता है जिसमें घर लायक चावल और सब्ज़ियाँ हो जाती हैं।

बुज़ुर्ग से हमें पता चला कि वह अब बागान में काम नहीं करते और 2006 में ही रिटायर हो चुके हैं। मेरी समझ में नहीं आया कि एक दिहाड़ी कामगार के रिटायर होने का क्या मतलब है इसलिए मैंने उनसे एक सरकारी नौकर का हवाला देते हुए इसका मतलब पूछा। उन्होंने बतलाया कि रिटायर होने के बाद उन्हें कम्पनी से ग्रेच्युटी मिली थी। 35 साल बागान में काम करने के बाद उन्हें ग्रेच्युटी के रूप में 27,000 रुपए (अमीय ने एक लाख रुपए का अन्दाज़ा लगाया था) मिले थे और यह रकम भी उन्हें किश्तों में दी गई जो कि मजबूरी में उन्हें लेनी पड़ी। हमने पेंशन के बारे में पूछा तो उन्होंने बतलाया कि पेंशन जोड़कर ही उन्हें वो रकम दी गई थी और अब उन्हें कुछ भी नहीं मिलता। हम दोनों को ही आश्चर्य हुआ पर शायद यही एक दिहाड़ी कामगार की हकीकत है या शायद यह भी नहीं। कुछ देर की बातचीत और नाश्ते पानी के बाद, उनसे फिर मिलने का वादा करके, हमने उनसे विदा ली।

***

घर आकर मैंने अपने पिताजी से बातचीत की। उनसे पता चला कि उन्होंने सन् 1972 में लगभग 20-21 साल की उम्र से मध्य प्रदेश की कोयला खदानों में काम करना शुरू किया था। उस समय खदानों के मालिक लोगों की सरकार नहीं बल्कि कुछ लोग हुआ करते थे। मेरे पिताजी जैसे कामगारों का वेतन 2 रुपए 35 पैसा प्रति हफ्ता होता था। फिर जब सन् 1973-74 में खदानों का राष्ट्रीयकरण हुआ, तब कामगारों की स्थिति में काफी सुधार आया। कामगारों को कई अधिकार व सुविधाएँ मिलीं। एक बेहतर और सम्मानजनक जीवन जी पाने का आधार मिला।

बाद में मैंने सोचा कि शायद यही कारण था कि मैं और मेरे भाई-बहनों का बचपन बचपन ही रहा, हमने अच्छी शिक्षा ली। मैं आई.आई.टी. जैसे संस्थान में पढ़ पाया। हमारे परिवार को अगर वह आधार न मिलता तो मेरे द्वारा यह सब कर पाने की गुंजाइश काफी कम होती।

होना तो यह चाहिए कि खदानों में काम करने वाले कामगारों जैसे अधिकार व सुविधाएँ चाय बागानों के कामगारों तक भी पहुँचें। पर आज इन खदानों में भी ठेकेदारों के मार्फत काम करने वाले दिहाड़ी मज़दूरों की

संख्या बढ़ रही है। इन खदानों का एकमात्र उद्देश्य आर्थिक मुनाफा कमाना है। ऐसे में क्या कामगारों को मिले अधिकार सुरक्षित रह पाएँगे? क्या वैसी ही स्थिति दोबारा लौट आएगी जैसी खदानों के राष्ट्रीयकरण से पहले थी या हालात उससे भी बद्तर होंगे?

चर्चा के लिए कुछ सवाल

- क्या चीन से चाय आयात करने में अँग्रेज़ों को कोई दिक्कत आ रही थी जिस वजह से उन्होंने अपने अधीन देशों में चाय उत्पादन को बढ़ावा दिया?
- इस नीति का असम के लोगों, वहाँ की अर्थव्यवस्था और सामाजिक स्थिति पर कैसा असर पड़ा होगा? क्या लोगों ने इन नीतियों का विरोध किया होगा?
- क्या आप भी ऐसे लोगों को जानते हैं जो अपने गाँवों से काम करने के लिए आपके शहर आए हैं? वे किन कारणों से अपने गाँव से बाहर निकले होंगे और उनकी कार्यस्थिति कैसी होगी?

विवेक मेहता: आई.आई.टी., कानपुर से मेकेनिकल इंजीनियरिंग में पीएच.डी. कर रहे हैं। अकादमिक जुड़ाव के साथ ही आई.आई.टी., कानपुर के संविदा कर्मचारियों द्वारा किए जा रहे संघर्ष में भागीदारी करने की कोशिश भी की है। वर्तमान में तेजपुर युनिवर्सिटी, असम में रह रहे हैं।

चित्र: बोस्की जैन: सिम्बायोसिस ग्राफिक्स एंड डिज़ाइन कॉलेज, पुणे से ग्राफिक्स डिज़ाइन में स्नातक। भोपाल में निवास।

चाय उद्योग पर समझ बढ़ाने के लिए निम्नलिखित सामग्री उपयोगी हो सकती हैं:

1. Rana P. Behal & P. Mahapatra, "Tea and Money versus Human Life: The Rise and Fall of the Indenture system in the Assam Tea Plantations, 1980-1908", in E. Valentine Daniel, Henry Bernstein and Tom Brass. Ed. Plantations, Peasants and proletarians in Colonial Asia, Frank Cass, London, 1992. (This Paper also appeared in a Special Issue on Plantation, Peasants and Proletarians in Colonial Asia, in the Journal of Peasant Studies, Volume 19, Nos. 3 &4, 1992.

2. Rana P. Behal, 'Power Structure, Discipline and Labour in Assam Tea Plantations in Assam Tea Plantations Under Colonial Rule', in Rana P. Behal and Marcel van der Linden (ed), Coolies, Capital, and Colonialism: Studies in Indian Labour History, Supplement 14, International Review of Social History, December, 2006, Cambridge University Press, UK, pp.143-172.

3. Rana P. Behal and Marcel van der Linden (ed), India's Labouring Poor: Historical Studies c.1600-c.2000, Foundation Books, New Delhi, 2007.

4. Rana P. Behal, 'Coolie Drivers or Benevolent Paternalists? British Tea Planters in Assam and Indenture Labour System in Assam', Modern Asian Studies 44, 1, 2010, pp. 29-51.

5. Rana P. Behal, 'Boundaries and Shifting Forms of Resistance: Labour in Assam Tea Plantations During Colonial Rule' in Herausgegeben von Elisabeth Hermann-Otto, unter Mitarbeit von, Marcel Simonis und Alexander Trefz (ed.) Sklaverei und Zwangsarbeit zwischen Akzeptanz und Widerstand (Georg Olms Verlag Hildesheim: Zurich, 1911).